

उत्तराखण्ड के तराई-भाबर का उपनिवेशीकरण और जनजातियाँ

डॉ० सुभाष पाण्डेय

कभी तराई-भाबर क्षेत्र के घने वनों में वन उपज संग्रहण, झूम खेती से जीवन यापन करने वाले थारू-बोक्सा जनजातियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक औपनिवेशीकरण की ब्रिटिश नीतियों तथा स्वतन्त्रता के उपरांत बनाये गये वन अधिनियमों, तराई में प्रवास की नीतियों खासकर शरणार्थियों हेतु बनायी गयी 'कोलोनाईजेशन योजना' से बेहद प्रभावित हुए हैं। कभी तराई-भाबर क्षेत्र के भू-स्वामी रहे बोक्सा और थारू आज अपनी ही भूमि पर साझी और हाली के रूप में कार्य करने को मजबूर हैं। आज गैर जनजातीय आगमन के कारण 'मिनी हिन्दुस्तान' के रूप में तब्दील हो चुके तराई-भाबर क्षेत्र की चकाचौंध के मध्य यह जनजाति अभी भी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं को बचाने हेतु संघर्षरत है।

प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश औपनिवेशीकरण हेतु नये-नये क्षेत्रों को औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत शामिल करने की ब्रिटिश नीति के कारण धीरे-धीरे वे समुदाय भी प्रभावित होने लगे, जो कि कभी शेष समाज से अलग स्वच्छन्द रूप से वनों में निवास करते थे, जिन्हें सदियों से आदिवासियों एवं जनजातियों के रूप में जाना जाता रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशीकरण की नीतियों ने जहाँ इन्हें इनके परम्परागत घरों वनों से बेदखल कर दिया, वहीं इनकी परम्परागत संस्कृति, सामाजिक परम्पराओं को इस प्रकार प्रभावित किया जिनसे ये जनजातियाँ आज भी उभर नहीं पायी हैं। तराई भाबर की अमूल्य वन सम्पदा के दोहन तथा कृषि भूमि विस्तार हेतु तराई-भाबर क्षेत्र में निवास को प्रोत्साहित करने की ब्रिटिश नीतियों से थारू और बोक्सा आज अपनी ही भूमि पर मजदूरों के रूप में कृषि कार्य करने को बाध्य हैं। तराई-भाबर भू-भाग में बसने वाले थारू-बोक्साओं पर ब्रिटिश शासन प्रबन्ध तन्त्र और आधुनिक प्रशासनिक तन्त्र के लिये किए गये फैसलों का व्यापक प्रभाव पड़ा और इन फैसलों ने जनजाति को आर्थिक दरिद्रता, भूमिहीनता, भुखमरी और सांस्कृतिक शून्यता के विराट अंधकार में ढकेल दिया है जिससे निकलने को यह जनजातियाँ आज भी प्रयास कर रही है।

बोक्सा जनजाति: सामान्य परिचय

उत्तराखण्ड राज्य के तेरह जिलों में से गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत तीन जिलों हरिद्वार, देहरादून एवं पौड़ी तथा कुमायूँ मण्डल के अन्तर्गत जिला नैनीताल एवं उधमसिंह नगर में बोक्सा जनजाति निवास करती है। गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत पौड़ी जिले में विकासखण्ड दुगड्डा, एवं जिला हरिद्वार के अन्तर्गत बहाद्राबाद विकासखण्ड तथा जिला देहरादून के अन्तर्गत डोईवाला, सहसपुर तथा विकासनगर में बोक्सा जनजाति निवास करती है। जबकि कुमायूँ मण्डल के अन्तर्गत नैनीताल जिले के काशीपुर, बाजपुर तथा गदरपुर विकासखण्डों में बुक्सा जनजाति निवास करती है। हिमाचल प्रदेश के 'सिरमौर' जिले के अतिरिक्त यह जनजाति उत्तर प्रदेश के 'बिजनौर' जिले में भी पायी जाती है। जबकि थारू जनजाति की जनसंख्या कुमायूँ के नैनीताल की तराई से लेकर गोरखपुर जनपद की तराई तक फैली हुई है। नैनीताल जिले के किच्छा, खटीमा, रामपुरा, सितारगंज, नानकमत्ता और बनबसा क्षेत्रों में यह जनजाति पायी जाती है।

उत्तराखण्ड राज्य का तराई-भाबर प्राचीन काल से ही थारू और बोक्सा जनजाति का गृहक्षेत्र रहा है। औपनिवेशीकरण से पूर्व तराई भाबर के वनों में थारू और बोक्सा जनजातियाँ ही स्थाई रूप से ही निवास करती थीं।¹ तराई भाबर में सदियों से निवास करने वाले थारू-बोक्साओं का वनों से अटूट सम्बन्ध रहा है। बोक्साओं के बारे में यह माना जाता है कि भाबर के आदिमानव बोगसे है,² प्रारम्भ में थारू-बोक्सा इन्हीं जंगलों में रहते थे तथा जंगलों से प्राप्त लकड़ी, शहद, कन्दमूल, जंगली जानवरों का शिकार आदि करते तथा पास के तालाबों में मछली पकड़कर जीवन निर्वाह करते थे एवं साथ-साथ स्थानान्तरित खेती(झूम कृषि) भी करते थे। धीरे-धीरे जंगलों के कट जाने के कारण, थारू-बोक्सा, जिनके जीवन की अर्थव्यवस्था जंगलों पर निर्भर थी, परेशान हो

गये। परिणामस्वरूप वे अब केवल खेती और खेतों में मजदूरी करने लगे।³ स्थानान्तरण खेती करने के कारण कभी भी इन जनजातियों की प्रवृत्ति भूमि तथा अन्य संसाधनों का स्वामी बनने की या उनके संचय की नहीं रही। यही फर्क संसाधनों के दोहन के मामले में इन्हें गैर जनजातीय समुदायों से अलग करता है।

बोक्सा जनजाति की ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्पराओं को संरक्षित करने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने बोक्साओं को 1950 में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया।⁷ तदुपरान्त 1967 में अनुसूचित जनजाति का दर्जा दे दिया।⁸ मूलतः तराई-भाबर के वनों में निवास करने वाले बुक्साओं का प्राचीनतम उल्लेख 16वीं शताब्दी में मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में “अबुल फजल” द्वारा लिखित प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ “आइन-ए-अकबरी” में मिलता है।⁹ कुमाऊँ की तराई इस जनजाति की निवास के कारण बुक्सा बहुल क्षेत्र को “बुक्सार” कहा जाता है।¹⁰ जबकि देहरादून में रहने वाले बोक्साओं को ‘मेहरा’ या ‘मेहरी’ नाम से जाना जाता है,¹¹ जो पहले कुशावंशीय राजपूत कहलाते थे। जबकि थारूओं को किरातों का वंशज माना जाता है।

थारू-बोक्सा जनजाति के अधिकतर विवरणों में इन्हें राजस्थान से आयी जनजाति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। राजपूतों के वंशज की धारणा के कारण बुक्सा लोग ‘समरजनेउ’ पहनते हैं। जबकि बोक्सा जनजाति की गोत्र व्यवस्था में मलणहंस, रणथम्बौरिया, रणवर्सिमा, राणा गोत्र इनके राजस्थान के साथ सम्बन्धों को दर्शाते हैं। जबकि थारूओं में ‘राणा’ गोत्र तथा नाम के साथ ‘सिंह’ जोड़ने की परम्परा रही है। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि भारत में मुगलों के आक्रमण के समय चित्तौड़ की राजपूत जातियों की अनेक स्त्रियाँ निम्न वर्ग के अनुचरों के साथ भाग आईं और उन्होंने तराई में शरण ली यह बोक्सा तथा थारू जनजाति इन्हीं की संतति है। सम्भवतः इसी कारण इन जनजातियों की पारिवारिक योजना में स्त्रियों की प्रधानता है। थारू स्वयं को राणा प्रताप का वंशज मानते हैं।

बोक्सा जनजाति के ‘बोक्सा’ नाम संबोधन के सन्दर्भ में भी विभिन्न मत बोक्साड़ की मौखिक अनुश्रुतियों में आज भी जीवन्त हैं। हरिद्वार जिले के अन्तर्गत विकासखण्ड बहाद्राबाद में लालढांग, छोटा रसूलपुर, बड़ा रसूलपुर, ढँढियानवाला आदि ग्रामों में किये गये सर्वेक्षण में बोक्सा बुजुर्गों की अनुश्रुतियों के अनुसार बोक्सा जनजाति को सूर्यवंशी एवं दिल्ली के समीप “बक्सापुर” नामक स्थान का बताया जाता है। यह माना जाता है कि बक्सापुर में निवास होने के कारण ही जनजाति को बोक्सा नाम से सम्बोधित किया गया। वर्तमान में किसी भी लिखित ऐतिहासिक साक्ष्य में यह विवरण प्राप्त नहीं होता है। यह बोक्सा नाम उच्चारण के सन्दर्भ में एक नयी धारणा को जन्म देता है जो कि शोध का विषय है। थारू सम्बोधन के सन्दर्भ में प्रचलित अवधारणा के अनुसार पहले तराई के निवासियों को ‘थारू’ कहकर पुकारा जाता था, जो शब्द बाद में थारू के रूप में परिवर्तित हो गया। एक अन्य धारणा के अन्तर्गत चावल और मांस अधिक खाने के कारण बोक्साओं को ‘भक्सी’ कहा जाने लगा जो बाद में ‘बोक्सा’ बन गया।

इन जनजातियों की अन्य प्रमुख विशेषता इनकी स्वयं की गोत्र व्यवस्था है। बोक्सा-थारू जनजाति क्षेत्रों में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार बोक्सा जनजाति के प्रमुख गोत्रों में रणवर्सिमा, मलणहंस, रणथम्बौरिया, जगदेव पंवार, मुसलमानियाँ, गुरुवार, प्रमुख हैं। मुसलमानियाँ गोत्र बोक्साओं के मुस्लिम समाज से सम्पर्क तथा गुरुवार सिखधर्म के साथ सम्पर्क को दर्शाता है। मुसलमानियाँ गोत्र के अतिरिक्त अन्य बोक्सा गोत्रों में ‘पीर पूजा’ का प्रावधान है।

थारू-बोक्सा बाहुल्य चौरसिया माल या तराई और गढ़वाल भाबर :

लोक गाथाओं में इस क्षेत्र को ‘तल्ला देश’, ‘माल’, ‘चौरासीमाल’, ‘नौलखा माल’, ‘मढौ की माल’ और ‘मधुवा की माल’ आदि नामों से पुकारा गया है। अकबर के शासनकाल में तराई को ‘कुमायू सरकार’ के नाम से जाना जाता था। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से इसे तराई के नाम से जाना जाता है। कहा जाता है कि थारू-बोक्साओं के आने के साथ ही इसे ‘तेरे’ या ‘तीरे’ कहा जाने लगा, जो आगे चलकर तराई हो गया। इस

जाति ने, जिसे प्राचीन साहित्य में 'तीरे' कहा गया है, पूरब की ओर तीरभुक्ति को, तथा सम्भवतः अपने निवास से इस क्षेत्र का तराई नाम दिया गया था।¹⁴ उसकी नाप चौरासी कोस होने के कारण उसे "चौरासी माल" तथा नौलाख रूपये के राजस्व के कारण इसे "नौलखिया माल" कहा गया।¹⁵

वर्तमान में तराई भाबर क्षेत्र उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल मण्डल में जिला पौड़ी में तथा कुमाऊँ मण्डल में ऊधमसिंहनगर, चम्पावत और नैनीताल जिलों के अन्तर्गत आता है। शिवालिक पर्वत श्रेणी के दक्षिण ढाल की तलहटी पर भू-भाग के एकाएक समतल हो जाने से पहाड़ों से कंकड़-पत्थर मिट्टी आदि पानी के साथ बहकर आते रहे और यहाँ पर जमा होते रहे। इस जमाव के कारण जो संकरी पट्टी अस्तित्व में आयी उसको भाबर नाम दिया गया है। बोक्साड़ी क्षेत्र का प्राचीनतम प्रशासनिक इकाई के रूप में उल्लेख 16वीं शती में मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल के विवरणों में मिलता है।¹⁸ अकबर के राज्यकाल के पूर्व तक तराई के दो भाग थे।(1) मुगल शासकों के अन्तर्गत "कुमाऊँ सरकार"(2) चन्द्र शासकों के अन्तर्गत "तराई"। कुमाऊँ सरकार को 21 महालो में विभक्त किया गया था। इन्हीं महालों में एक महाल "भुक्सी बुक्साड़" भी था। ब्रिटिश काल में तराई के प्रशासनिक स्वरूप के वर्णन पर एटकिन्सन के अनुसार तराई, कुमाऊँ डिवीजन का एक जिला, इसके उत्तर में कुमाऊँ भाबर, दक्षिण में पीलीभीत, बरेली और मुरादाबाद जिले व रामपुर राज्य, पूरब में शारदा नदी और पश्चिम में बिजनौर जिला है। इसका क्षेत्र पहाड़ी तलहटी पर करीब नब्बे मील लम्बी संकरी पट्टी के रूप में है। इसकी औसत चौड़ाई बारह मील है, जिले का मुख्यालय मई से नवम्बर तक नैनीताल में रहता था। क्योंकि इन महीनों में तराई की घोर अस्वस्थकर जलवायु में रहना यूरोपीय व कई स्थानीय लोगों के लिए भी मुश्किल हो जाता था। यहाँ सुपरिंटेंडेंट मुख्य नागरिक-अधिकारी थे। जिसकी सहायता एक सहायक और दो मानद मजिस्ट्रेट करते थे। जिनमें से एक काशीपुर परगने के लिए तथा दूसरा बाजपुर, गदरपुर और रूद्रपुर परगनों के लिए थे। गाथाओं में इसे "चौरसिया माल" भी कहा गया है अर्थात् जिसकी लम्बाई चौरासी कोस थी। चन्द्रवंश के शासन काल के पहले से ही कुमाऊँ के पहाड़ी भागों से लोग जाड़े में अपने पशुओं के साथ तराई-भाबर में आते थे और गर्मी आने पर वापस चले जाते थे। तब भाबर में बसने वाले कुमैया (कुमाउनी) परिवार शीतकाल में माल के विशेष घास वाले क्षेत्रों में गोठ बनाने चले आते थे, परन्तु स्थायी निवास माल में कभी नहीं बनाते थे, क्योंकि वे भाबर में पहाड़ों से उतरकर भले ही शरण लेते थे पर जानते थे-भाबर शरण, माल मरण। अर्थात् भाबर में तो शरण ली जा सकती है, पर माल(तराई) में बसना तो मरण समान है।²⁰ हिमालय की पशुचारण व्यवस्था में तराई का महत्त्व को वर्णित करते हुए राहुल साँस्कृत्यायन ने कुमाऊँ पुस्तक में हिमालय को 'पशु परिचारण का स्वर्ग' कहा है।²¹ पहाड़ियों के लिये तराई और भाबर दो अलग-अलग भौगोलिक इकाई नहीं थी अपितु तराई और भाबर एक दूसरे के लिये अविभाज्य थे और हमेशा से ही दोनों को एक ही नाम 'तराई भाबर' पुकारा जाता था। तराई भाबर के बसने के आरम्भिक चालीस वर्षों तक कठिनाइयाँ थी। भाबर की जलवायु भाबर के बसने में विशेषरूप से बाधक थी। ग्रीष्मकाल में भाबर के 'घाम'(तीव्र धूप) से घबराकर गढ़वाली अपने स्त्री बच्चों को पहाड़ों में अपने गाँवों में भेज देते थे। आषाढ़ में तीव्र तापमान के साथ अधिक वर्षा के कारण मलेरिया आदि नानाप्रकार के ज्वर, अपच, हैजा, विशुचिका आदि रोग फैलते थे। भादों में वर्षा बन्द होने के कारण तीव्रधूप पड़ती थी जो अनेक रोग फैलाती थी। प्रत्येक गाँव में दो-चार व्यक्ति रोगग्रस्त होकर 'खटोली' पर लेटे मिल जाते थे।²² इन विकट तथा विषम परिस्थितियों में तराई-भाबर में औपनिवेशीकरण से पूर्व बोक्सा व थारू जनजातियाँ ही तराई भाबर की विकट जलवायु को सहन करने में सक्षम थी। कभी हैजा तथा मलेरिया जैसी बीमारियों का गढ़ रहे तराई में अन्य किसी भी समुदाय के लिये रहना सम्भव न था।

बोक्सा बहुल्य क्षेत्रों में भूमि एवं वन प्रबन्धन की ब्रिटिश प्रशासनिक नीति -

प्रायः कहा जाता है कि ब्रिटिश शासन के आरम्भिक दिनों में गढ़वाल भाबर में कोई बस्ती नहीं थी। एटकिन्सन के अनुसार अंग्रेजी शासनकाल के प्रारम्भिक दौर में तराई-भाबर क्षेत्रों में थारू और बोक्सा जनजाति कृषि का कार्य करती थी और ये जाति भ्रमणशील थी।²³ उत्तराखण्ड का तराई-भाबर प्रदेश मूल रूप से थारू

और बोक्सा जनजातियों का गृह प्रदेश था।²⁴ अंग्रेजों को जब तराई भाबर क्षेत्र के शीशम, साल, और सागौन बहुल वनों का ज्ञान हुआ तो वे तराई-भाबर की इस सम्पदा के दोहन के लिये ललक उठे। आर्थिक लाभ के लिये इस क्षेत्र के बहुमूल्य वनों का खूब दोहन किया गया। अंग्रेजों द्वारा यहाँ पर बाहरी लोगों को बसाकर कृषि के विस्तार की योजना बनायी गयी जिससे इस क्षेत्र को ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत लाकर यहाँ की अमूल्य वन सम्पदा के दोहन के साथ ही यहाँ कृषि क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता था, जिसका लाभ अन्ततः ब्रिटिश शासन को ही प्राप्त होना था, परन्तु यह कार्य थारूओं तथा बोक्साओं को हाशिये में रखकर ही किया जा सकता था। क्योंकि इन जनजातियों की मूल प्रवृत्ति शेष समाज की प्रवृत्ति से सर्वथा भिन्न थी, जिसे ब्रिटिश नीति-नियंता नहीं समझ पाये थे।

भाबर में खाम या स्थाई रूप से ग्रामों को बसाने का कार्य सन 1869-70 में जिलाधिकारी कर्नल मि0 गार्सटन ने किया।²⁵ थारू-बोक्सा बाहुल्य क्षेत्रों का विकास और तराई के घोर वनों को काटकर उस भू-भाग पर कृषि क्षेत्र का विकास करना ब्रिटिश सरकार की प्रमुख प्राथमिकता थी। 1939 में कर्मभूमि पुस्तक में प्रकाशित (भाबर की प्राचीन सभ्यता) शीर्षक लेख में श्री सतीशचन्द्र काला, क्यूरेटर म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद ने यह मत प्रकट किया कि बहुत सम्भव है कि 500 वर्ष पूर्व यह स्थान जंगलों से भरा न था। ब्रिटिश काल में सरकार ने निवास को प्रोत्साहन देने के लिये भाबर में नहरें लम्बी तथा पक्की बनवा दी। कुछ ग्रामों में नलों के द्वारा पीने का जल पहुँचने लगा। वनों के नष्ट हो जाने से ज्वरों का प्रकोप कम होने लगा। मलेरिया की रोकथाम के लिये भी प्रयत्न किये जाने लगे। अधिकांश गाँवों को मिलाने के लिये कच्ची सड़कें बनायी गईं। रिपोर्टों के अनुसार 1815 ई0 में जिस समय भाबर ब्रिटिश राज्य में आया यहाँ खेती बाड़ी के कोई चिन्ह नहीं थे। हरिद्वार स्थित लालढांग और चौकीघाट की मंडी जिनका सम्बन्ध 16वीं सदी से मालूम पड़ता है, इसके साक्षी हैं।²⁶ इस आधार पर यह माना जा सकता है कि तराई भाबर में औपनिवेशीकरण के प्रभावों के फलस्वरूप ही निवास प्रारम्भ हुई और इस औपनिवेशीकरण से पूर्व इस भू-भाग पर बोक्सा और थारू के अलावा किसी अन्य जाति का बसना नामुमकिन था।

तराई भाबर की अमूल्य धरोहर वहाँ की वन सम्पदा का होना भी तराई के विनाश का प्रमुख कारण बना। यहाँ के वनों के सन्दर्भ में सर्वप्रथम रूचि मि0 ट्रेल ने सन् 1823 में बन्दोबस्त कार्य में ली। यह बन्दोबस्त अस्सी साला बन्दोबस्त के नाम से जाना जाता है। भाबर के मूल निवासियों बोक्सों के सन्दर्भ में प्रशासनिक फ़ैसलों का सर्वप्रथम प्रारम्भ भाबर में जंगलों के विनाश के साथ प्रारम्भ होता है। 1910 तक ही भाबर के अधिकांश वन मिट चुके थे। कुछ झाड़ियाँ और बाँस के झुरमुट शेष रह गये। प्रारम्भ में बोक्सा-थारू ही इन वनों के मूल स्वामी थे क्योंकि औपनिवेशीकरण से पूर्व तराई भाबर के वनों में थारू और बोक्सा जनजातियाँ ही स्थाई रूप से ही निवास करती थीं।²⁷

स्वतन्त्रता पूर्व तक तराई भू-भाग में जनसंख्या “छितरी” हुई अवस्था में थी। क्योंकि ‘घातक’ जानलेवा जलवायु तथा जंगली जानवरों के आतंक के कारण तराई क्षेत्र में मानव जीवन असम्भव नहीं तो दूधर अवश्य था। “डिस्ट्रिक्ट गजेटियर” में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि ‘वर्तमान शताब्दी (बीसवीं शताब्दी) के पूर्वार्द्ध में अनेक पंजाबी लोग तराई क्षेत्र में आये लेकिन प्रतिकूल जलवायु के कारण जल्दी ही छोड़कर चले गये। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सैकड़ों वर्षों तक बोक्से और थारू ही इस क्षेत्र में रहे। बोक्साओं के बारे में माना जाता है कि भाबर के आदिमानव बोगसे है।²⁸

बोक्सा जनजाति में ऋणग्रस्तता और अवैध भूमि हस्तान्तरण प्रमुख समस्या रही है। अपने आरम्भिक वर्षों में अंग्रेजी शासन का ध्यान अधिक से अधिक लगान वसूल करना था।²⁹ ब्रिटिश सरकार के लगान, जमींदारों के जमीन के किराये तथा सूदखोरों के सूद की तीनतरफा मार से किसान जल्द ही भूमिहीन खेत मजदूर में बदल जाता था।³⁰ ब्रिटिशकालीन कृषि व्यवस्था किसानों के लिये अभिशाप बन गयी इससे कृषकों के कष्ट कई गुना बढ़ गये।³¹ जनजातीय क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन की विस्तारवादी योजना के कारण नये कृषि क्षेत्रों का

विकास तो हुआ, परन्तु यह जनजातियों की परम्परागत संस्कृति की बलि की कीमत पर किया गया विस्तार था।
वस्तुतः यह भारतीय कृषकों को उनकी जड़ों से उखाड़ने का प्रयास था।³²

तराई भाबर में प्रचूर मात्रा में कृषि भूमि उपलब्ध थी किन्तु क्षेत्र की अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण
यहाँ पर लोग स्थायी रूप में नहीं बसना चाहते थे।³³ अंग्रेजी शासन काल में स्थायी रूप से भाबर में बसने के
लिये पशुचारकों को प्रोत्साहित किया गया।³⁴ 1830 से 1875 की समयावधि में तराई क्षेत्र में लोगों को बसाने
के उद्देश्य से विस्तृत वनक्षेत्र को काटा गया। अत्यधिक वन विनाश के बाद ही तराई और भाबर के वन क्षेत्र
को संरक्षित किये जाने की आवश्यकता महसूस की गयी। अंग्रेजी शासनकाल के प्रारम्भिक दौर में तराई भाबर
की भूमि और वनों को लीज पर दिया गया। लीजधारकों से सालाना राजस्व वसूला जाने लगा। तराई भाबर में
की गयी खाम व्यवस्था के तहत भूमि पर मालिकाना हक सरकार का था। सम्पूर्ण क्षेत्र को सरकारी जमींदारी
माना गया था। अधिक से अधिक लोगों को तराई भाबर इलाके की ओर आकर्षित करने के लिये अंग्रेजी
प्रशासकों ने लोगों को विशेष सुविधा देना प्रारम्भ किया। कोई व्यक्ति जब गाँव बसाने के लिये खाम
सुपरिन्टेन्डेन्ट को आवेदन करता था, तो जंगल झाड़ियों को काटकर गाँव बसाने की अनुमति सरलता से मिल
जाती थी।

खाम सुपरिन्टेन्डेन्ट

खाम सुपरिन्टेन्डेन्ट भाबर में व्यवस्था बनाये रखना व नियमों के पालन के लिये उत्तरदायी था। खाम
सुपरिन्टेन्डेन्ट अपनी भूमि सम्बन्धी रिपोर्ट जिलाधिकारी के पास भेजता था। खाम सुपरिन्टेन्डेन्ट गाँव की कृषि
भूमि के लिये सीमा का निर्धारण करता था। तराई भाबर के घने वन संसाधनों की प्रचुरता और उनके दोहन
के साथ-साथ वहाँ पर राजस्व वृद्धि की सम्भावना को देखते हुए कृषि के विकास साथ ही तराई भाबर में
प्रशासनिक व्यवस्था को मजबूत करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने तराई भाबर में योजनाबद्ध तरीके से निवास को
प्रोत्साहित किया। गाँव बसाने के प्रारम्भिक दौर में जब तक कृषक खेती से दो फसलें प्राप्त नहीं कर लेता था,
उससे भूमि का किराया नहीं लिया जाता था, तीसरी फसल काटे जाने के बाद ही सरकार उपज के अनुसार भूमि
के किराये का निर्धारण करती थी।³⁵

सिरगिरोह

ब्रिटिश सरकार के द्वारा तराई में निवास के जिस प्रशासनिक सुधारों को अपनाया गया उसमें भूमि
सम्बन्धी 'सिरगिरोह' प्रमुख थे। ये ग्रामों से राजस्व एकत्रित करते थे। भाबर में गाँवों के आसामियों से राजस्व
की वसूली करके पटवारी के पास जमा करना और गाँव में शान्ति और सुरक्षा का प्रबन्ध करना सिरगिरोह का
कार्य था।³⁶ वह इधर-उधर के आसामियों को बुलाकर जंगल-झाड़ियाँ काटकर कृषिभूमि बनवाता था और
आवश्यकता पड़ने पर उनकी आर्थिक सहायता करता था।³⁷ सिरगिरोह अपने गाँव के लिये निर्धारित 'किराया'
और देय राशि को विभिन्न आसामियों से एकत्रित करता और उसे तथा अपनी कृषि भूमि के 'किराया' को
पटवारी के पास जमा करता था। उसे सारे गाँव से प्राप्त राजस्व का दस प्रतिशत 'सिरगिरोह दस्तूर' के रूप में
नगद दिया जाता था। यदि सिरगिरोह अपने व्यय पर जंगल-झाड़ियों को कटवाकर कृषि भूमि का निर्माण करवाता
था तो यह आसामियों से कुछ राशि अपने व्यय की पूर्ति के लिये लेकर उन्हें गाँव में बसाता था।³⁸

पटवारी

भाबर में भूमि प्रबन्धन का ब्रिटिश सरकार का दूसरा ब्रिटिश प्रतिनिधि "पटवारी" होता था। पटवारियों
को एक या दो सर्किलों की व्यवस्था सौंपी जाती थी। नये टुकड़ों को आबाद करने तथा पुराने आसामी के मर
जाने पर उसके उत्तराधिकारी द्वारा उसकी भूमि पर अधिकार ना करने की अवस्था में उसे आबाद करने का कार्य
भी पटवारी का था। पटवारी और सिरगिरोह दोनों मिलकर तराई भाबर में भूमि प्रबन्धन करते थे। भाबर में भूमि
सम्बन्धी बखेड़े बहुत थे। इसलिये पहाड़ों के पटवारियों की अपेक्षा भाबर के पटवारियों के पास कम ग्राम होते
थे। किन्तु विभिन्न डिपुटी कमिश्नर गढ़वाल के जिन पटवारियों को दण्ड देना चाहते थे, उन्हें भाबर भेजा करते

थे। फलतः क्ले के अनुसार भाबर में निरन्तर उन पटवारियों को भेजा जाता रहा जो जिले भर के सबसे सुस्त तथा अयोग्य थे। कृषि भूमि का विवरण रखना भी पटवारी के आवश्यक कर्तव्यों में से एक था।

साड़ी एवं हाली

भाबर में अधिकांशतः पहाड़ और मैदान से आये हुए निम्न वर्ण के लोग तथा तराई भाबर में शताब्दियों से कृषि करते आ रहे थारू-बुक्सा जनजाति के लोग साड़ी एवं हाली का काम किया करते थे। औपनिवेशीकरण के दौर में ब्रिटिश अधिकारियों का अधिकतम ध्यान तराई भाबर के धने जंगलों को काटकर वहाँ पर कृषि विस्तार हेतु निवास को प्रोत्साहन देना था।

तराई में रेलवे का विकास और तराई में व्यापक वनविनाश-

अंग्रेजों के द्वारा भारत में रेलवे के विकास के प्रमुख कारणों में पहला कारण आर्थिक, दूसरा प्रशासनिक तथा तीसरा सुरक्षा सम्बन्धी कारण थे। परन्तु भारत में रेलवे का विकास तथा विस्तार वनों की कीमत पर किया जाना तय था और तराई भाबर के वन इस हेतु सर्वाधिक प्रयुक्त समझे गये थे। रेलवे का विकास होने के साथ ही स्लीपरो की माँग में तेजी से वृद्धि हुई। फलस्वरूप 1855 से 1861 के बीच की समयावधि में जंगलों को बड़ी निर्दयता से काटा जाने लगा। ठेकेदारों को जंगलों को मनमर्जी से काटे जाने की छूट मिल गयी। तराई भाबर के वन संसाधन इन स्लीपरो की आपूर्ति के प्रमुख स्रोत के तौर पर ब्रिटिश सरकार की प्राथमिकता में थे। साल और सागौन के स्लीपर बनाने के लिये इन जंगलों का बहुत अधिक विनाश हुआ। स्लीपरो को ले जाने हेतु तराई-भाबर में वनों को काट कर सड़कों का निर्माण किया गया। परिणामस्वरूप 19वीं सदी के अन्त तक इस क्षेत्र के अधिकांश वन कट चुके थे अथवा अत्यधिक वन विनाश हो चुका था।³⁹ परन्तु यह वन विनाश जनजातियों के विनाश का प्रमुख कारण बना और इनके परम्परागत घरों वनों में गैरजनजातीय समुदायों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हो गया। इन जनजातियों के क्षेत्रों में मजदूरों ठेकेदारों व अन्य गैर जनजातीय समुदायों के प्रवेश के कारण गैर सांस्कृतिक सम्पर्क का प्रभाव जनजातियों के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा। औपनिवेशिक शासनकर्ता इन जनजातियों की मूल प्रवृत्ति को नहीं समझ पाये और प्रशासकीय नीतियों को थोप दिया गया, जिसने इनका सर्वनाश ही किया।

ब्रिटिश नीतियाँ और तराई में गैर जनजातीय निवास

तराई भाबर के संसाधनों के राष्ट्रीयकरण होने से जहाँ सरकारी अधिकारी, ठेकेदार और पूजीपति व बड़े किसानों का विकास हो रहा था, वहीं परम्परागत और सांस्कृतिक रूप से इन वनों की धरोहर बोक्सा जनजाति इस वृहद परिवर्तन को समझने में असमर्थ थी। अधिक से अधिक लोगों को तराई भाबर इलाके की ओर आकर्षित करने के लिये अंग्रेजी प्रशासकों ने लोगों को विशेष सुविधा देना प्रारम्भ किया जिससे बोक्साड़ी क्षेत्रों में गैर जनजातीय समुदाय का निवास होने लगा। जिनकी प्रवृत्ति सदियों से वनों में रहने वाले थारू तथा बोक्साओं से सर्वथा भिन्न थी।

तराई-भाबर में आप्रवासी वाह्य समूहों ने जहाँ एक ओर तराई में उपलब्ध खाली और बन्जर भूमि को अधिकृत किया। वहीं उन्होंने सीधे-साधे थारू-बुक्सा जनजाति के परिवारों को उनके कानूनी रूप से स्वामित्व प्राप्त भूमि से भी बलपूर्वक बेदखल कर दिया। उन्हें अपने पैतृक ग्रामों से निर्वासित कर अविकसित भूमि क्षेत्रों में खदेड़ दिया गया जो कम उपजाऊ थे। सदियों से वनों में रहे बोक्साओं के शेष समाज की चालाकियों से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी भूमि पर गैर जनजातीय कब्जे हो गये और वे अपनी ही भूमि पर मजदूर के रूप में कार्य करने हेतु बाध्य हो गये।

इस समय तराई-भाबर में बसने वाले काश्तकारों में गढ़वाली कुमाउनी और देसी थे। देसी के अन्तर्गत मैदानों पर यहाँ आकर बसे आसामियों की गणना की जाती थी। इसके अतिरिक्त थारू और बोक्सा पहले से ही यहाँ बसे हुए थे। नेपालियों ने भी यहाँ पर आकर बसना प्रारम्भ कर दिया था। भाबर के जंगलों को बचाने के प्रयास हुए परन्तु तब तक भाबर क्षेत्र में वनों का विनाश इस हद तक हो चुका था और निवास इस स्थिति पर आ चुकी थी कि बोक्सा भूमिहीन होने प्रारम्भ हो गये और तराई भाबर में स्थिति सरकार के नियन्त्रण से निरन्तर बाहर होती जा रही थी। चोरी, डाका, अपहरण, हत्या, अनैतिकता, अवैध मदिरा निर्माण और जुआ आदि प्रतिदिन

होने वाले अपराधों को भाबर के गाँवों की बिखरी हुई स्थिति से प्रोत्साहन मिल जाता था।⁴²

निष्कर्ष-

तराई-भाबर में उपनिवेशीकरण से पूर्व किसी भी प्रकार के खेतीबाड़ी के चिह्न नहीं थे और ब्रिटिश नीतिनियंताओं के खेती को प्रोत्साहन देने की नीति के कारण बोक्सा बाहुल्य तराई-भाबर में कृषि विकास हेतु व्यापक वन विनाश हुआ। जिससे मूल रूप से वनों में निवास करने वाले बोक्सा और थारू प्रभावित हुए। सन् 1853 ई० में रेलवे के विकास के साथ ही रेल पटरियों हेतु स्लीपरों की माँग को पूरा करने के लिये तराई भाबर के वन बेहद अनुकूल थे। रेलवे के विकास के नाम पर तराई में वन विनाश तो हुआ ही साथ ही गैर जनजातीय समुदायों के लोगों का तराई-भाबर में हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ जिनकी संस्कृति यहाँ के मूल निवासियों थारू तथा बोक्साओं से सर्वथा भिन्न थी। तराई भाबर में ब्रिटिश हस्तक्षेप के समय यह क्षेत्र मलेरिया हैजा जैसी तमाम बीमारियों के गढ़ थे तथा इन जनजातियों के अलावा किसी भी समुदाय का तराई भाबर की विकट जलवायु के साथ सामंजस्य बैठाना बेहद कठिन था। सरकार द्वारा तराई-भाबर में मलेरिया हैजा उन्मूलन कार्यक्रम चलाकर गैर जनजातीय समुदायों को इस क्षेत्र में बसाया गया, परन्तु गैर जनजातीय हस्तक्षेप तथा व्यापक वन विनाश ने मूलतः वन आधारित अर्थव्यवस्था वाले थारूओं तथा बोक्साओं का सर्वथा विनाश ही किया। स्वतन्त्रता के उपरांत विस्थापितों हेतु बनी कोलोनाइजेशन³⁵ योजना के तहत तराई-भाबर में पाकिस्तानी बांग्लादेशी शरणार्थियों को बसाया गया। अत्यधिक उपजाऊ भू-भाग होने के कारण गढ़वाली तथा कुमाऊँनी परिवारों के तराई-भाबर में बसने के कारण तराई-भाबर मिनी हिन्दुस्तान के रूप में तब्दील हो गया तथा थारू तथा बोक्सा अपने ही घरों में उपेक्षित हो गये। अपने परम्परागत घरों वनों में रहने वाली ये जनजातियाँ शेष समाज की चालाकियों को नहीं समझ पायी और कभी तराई-भाबर के भूस्वामी रहे थारू और बोक्सा आज अपनी ही भूमि पर साड़ी तथा हाली के रूप में कार्य करने हेतु मजबूर हैं।

थारू-बोक्साओं की भूमि पर बढ़ रहे अवैध कब्जों के बाद आज भी कृषि इन जनजातियों का प्राथमिक व्यवसाय है। स्वतन्त्रतापूर्व तथा स्वतन्त्रता के उपरान्त बनायी गयी नीतियों ने इन जनजातियों का सर्वथा विनाश ही किया है। आज गैर जनजातीय निवास के कारण 'मिनी हिन्दुस्तान' के रूप में तब्दील हो चुके तराई-भाबर की चकाचौंध के मध्य यह जनजाति अभी भी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं को संजोए हुए है। आज तराई-भाबर में इन जनजातियों की संस्कृति के संरक्षण हेतु तमाम प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार प्रदत्त अनुदानों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों के कारण आज बोक्साओं का जीवन प्रगतिशील है। जरूरत केवल इनकी अमूल्य सामाजिक सांस्कृतिक धरोहर को सहेजकर इन्हें विकास की मुख्यधारा में शामिल करने की है।

सन्दर्भ:-

1. जोशी, भवानी दत्त, रि० रि० नेट, गढ़वाल-भाबर, पृ० सं०-13
2. नैथानी- ललिता प्रसाद-गढ़वाल भाबर अब और तब, पृ० सं०-3
3. हसनैन नदीम- जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशिंग एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2001, पृ० सं०-133
4. श्रीवास्तव, ए० आर० एन०- 1996, उत्तर प्रदेश की जनजातियाँ, पृ० सं०- 7-8
5. वेबसाइट www.hamarauttaranchal.com/samaj/tribe2.asp. साइट डाउनलोड तिथि- 23 मई 2006
6. तिवारी, डा० विजय कुमार- भारत की जनजातियाँ, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, पृ० सं०- 77, 78
7. रावत, अजय- 1996, तराई के वन और वनवासी, पृ० सं०-170, नैनीताल
8. शर्मा, राजेन्द्र प्रसाद- अमर उजाला, बरेली, दैनिक, 6 मार्च 1991
9. स्वतन्त्रता के उपरांत विकराल होती शरणार्थी समस्या निस्तारण हेतु बनायी गयी कोलोनाइजेशन योजना के अन्तर्गत 2,537 शरणार्थी परिवारों को 700 राजनीतिक पीडित, 186 भूतपूर्व सैनिक, 78 कृषि स्नातक और 265 भूमिहीन परिवारों को यहाँ बसाया गया है। इस योजना के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी डिप्टी डायरेक्टर कोलोनाइजेशन की थी।: सकलानी, शक्ति प्रसाद-तराई रूद्रपुर का इतिहास और विकास, गौरव प्रकाशन, दिल्ली, पृ० सं०- 103
10. उत्तरांचल राज्य के गठन के फलस्वरूप होने वाले औद्योगीकरण ने भी तराई के अन्दर बहुत सी समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है। जिसमें सर्वाधिक चिन्ताजनक है कृषि क्षेत्र का विनाश। तराई भाबर में स्थापित विशेष औद्योगिक क्षेत्र 'सिडकुल' द्वारा

कुल मिलाकर 5368 एकड़ उपजाऊ कृषि भूमि की बलि दी गयी।:
www.nainitalsamachar.com/janambar/corbett.htm, वर्ष 29, अंक-1, 15 अगस्त से 15 सितम्बर 2005 साईट
डाउनलोड तिथि फरवरी 2007

11. सकलानी, शक्ति प्रसाद- तराई-रूद्रपुर का इतिहास और विकास, गौरव प्रकाशन, दिल्ली, पृ० सं०- 468
12. नैथानी, डा० शिव प्रसाद- उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूगोल, पवेत्री प्रकाशन पृ० सं०- 343
13. नैथानी, डा० शिव प्रसाद- वही, पृ० सं०- 343
14. सांकृत्यायन, राहुल- कुमाऊँ, पृ० सं०- 188
15. डबराल- अलकनन्दा उपत्यका, पृ० 128
16. एटकिन्सन, ई० टी०- हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज, भाग-3, पार्ट-1, पृ० सं०- 53
17. एटकिन्सन, ई० टी०- हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज, खण्ड-2, पार्ट-1, पृ० सं०- 371-72
18. हसन अमीर,-उत्तर भारत की जनजातियाँ, उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ सं०- 85
19. नैथानी- ललिता प्रसाद- गढ़वाल भाबर अब और तब, पृ० सं०- 5
20. बिश्ट, डा० सुरेन्द्र-वही, पृ० सं०-130
21. नैथानी- ललिता प्रसाद- वही, पृ० सं०- 3
22. राय सत्या, भारत में उपनिवेशवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय,दिल्ली वि०वि०, 1988, पृ० सं० 135
23. उपरोक्त
24. मित्तल, सतीश चन्द्र, आधुनिक भारत, एन०सी०आर०टी०, 2003, पृ० सं० 68
25. उपरोक्त, पृ० सं० 69
26. डबराल, शिव प्रसाद-उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-7, पृ० सं०-249
27. रावत, अजय- तराई के वन और वनवासी, पृ० सं०- 42, 1996, नैनीताल
28. जोशी, भवानीदत्त- रिपोर्ट आन दि रिविजन आफ रेंट इन गढ़वाल भाबर, पृ० सं०- 72
29. डबराल, शिवप्रसाद- गढ़वाल का इतिहास, भाग-7, खण्ड-1, पृ० सं०- 266
30. डबराल, शिवप्रसाद- गढ़वाल का इतिहास, भाग-7, खण्ड- 1, पृ० सं०- 251
31. वाल्टन, एच० जी०- गढ़वाल गजेटियर, पृ० सं०-9, 1989, देहरादून
32. वाल्टन- गढ़वाल ए गजेटियर, 1989, देहरादून, पृ० सं०- 152,
33. वाल्टन एच० जी०- गढ़वाल ए गजेटियर, 1989,देहरादून,पृ० सं०- 5
34. डबराल- अलकनन्दा उपत्यका, पृ० सं०- 141
35. स्वतन्त्रता के उपरांत विकराल होती शरणार्थी समस्या निस्तारण हेतु बनायी गयी कोलोनाइजेशन योजना के अन्तर्गत 2,537 शरणार्थी परिवारों को 700 राजनीतिक पीड़ित, 186 भूतपूर्व सैनिक, 78 कृषि स्नातक और 265 भूमिहीन परिवारों को तराई में बसाया गया है। इस योजना के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी डिप्टी डायरेक्टर कोलोनाइजेशन की थी।: सकलानी, शक्ति प्रसाद- तराई रूद्रपुर का इतिहास और विकास, गौरव प्रकाशन, दिल्ली, पृ० सं०-103